इकाई 15 समाजवादी विचारधाराः राम मनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण

इकाई की रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना

15.2 भारत में समाजवादी आन्दोलन का इतिहास

15.3 कांग्रेस समाजवादी पार्टीः कार्यक्रम और नीतियाँ

15.4 डा. राम मनोहर लोहिया की समाजवादी विचारधारा

15.5 जयप्रकाश नारायण की समाजवादी विचारधारा

15.6 सारांश

15.7 अभ्यास प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के दर्शन के रूप में समाजवादी विचारधारा का विकास अधिकांशतः भारत पर पश्चिमी प्रभाव का परिणाम है। प्रमुख भारतीय विचारकों और राजनीतिक नेताओं के विचारों पर सोवियत विचारों और विचारधाराओं के प्रभाव के कुछ उदाहरण हैंः भारत के एक प्रमुख संत-दार्शनिक श्री अरबिन्द के 1893 में "इंदु प्रकाश" पत्रिका में उसके लेखों में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं के मध्य श्रेणी मानसिकता की आलोचना, और लेख "श्रमिक वर्ग (सर्वहारा)" के सामाजिक विकास पर उसका तर्क, 1908 में *'केसरी'* में रुसी नास्तिकवादी (निहिलिस्टों) के संदर्भ में बाल गंगाधर तिलक की चर्चा, 1917 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के गया अधिवेशन में बी.जी. खेर के अपने अध्यक्षीय भाषण में समकालीन अंतर्राष्ट्रीय पद्धति में रुसी क्रान्ति की शानदार भूमिका विशेषकर भारत के सामाजिक और राजनीतिक पद्धति के संरचनात्मक विकास में ट्रेड यूनियन आन्दोलनों की भूमिका पर उसके बल की चर्चा; और पंडित जवाहरलाल नेहरू के 1926 की नई आर्थिक नीति के बारे में धारा प्रवाह विचार उनके लेखों और पुस्तकों; जैसे *सोवियत रशिया*, आत्मकथा और ग्लिम्पसेज आफ वर्ल्ड भारतीय प्रमुख विचारकों और राजनीति के नेताओं पर सोवियत विचारों और विचारधाराओं के प्रभावों के कुछ उदाहरण हैं।

भारत में स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख व्यक्तित्व, लाला लाजपत राय की कुछ आलोचकों द्वारा भारत में समाजवाद और बोल्शेविकवाद के प्रथम लेखक के रूप में माना गया था। मार्क्सवादी नेता, एम. एन. राय, लाला लाजपतराय की रचनाओं, विशेषकर *"फ्यूचर ऑफ इंडिया* (भारत का भविष्य) के कटु आलोचक था। उसने लाला लाजपतराय को बोल्शेविक राजनीतिज्ञ के रूप में माना जिसे समाजवाद के प्रति सहानुभूति है।" राय ने अपनी पुस्तक *"इंडिया इन ट्रांजिशन एण्ड इंडियन प्रोब्लम"* में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं के बुर्जुवा मनोवृत्ति के भी आलोचना की। राय ऐसी साम्यवाद का अंधभक्त नहीं था। वह रुसी साम्यवाद को राज्य पूंजीवाद का रूप मानता था। अपनी पुस्तक *'रशियन रिवल्यूशन'* में उसने रुसी क्रान्ति को "इतिहास की एक आकस्मिक सफलता" के रूप में माना।

15.2 भारत में समाजवादी आन्दोलन का इतिहास

भारत में समाजवादी आन्दोलन केवल प्रथम विश्वयुद्ध और रुस की क्रान्ति के बाद ही लोकप्रिय हुआ।

बीसवें दशक में अप्रत्याशित आर्थिक संकट के साथ साथ ब्रिटिश सरकार की पूंजीवादी और साम्राज्यवादी नीतियों ने उत्तरोत्तर मुद्रा स्फीति और जनता में बेरोज़गारी बढ़ाई की। जान पेट्रिक हेथकान्स के अनुसार साम्राज्यवाद को श्रमिकों की दासता स्थायी बनाने के लिए अभिप्रेत पूंजीपति वर्ग की सरकार के रूप में समझा जाता था। लेनिन और ट्रॉटस्की के नेतृत्व में रुस की क्रान्ति की सफलता और उस देश की आर्थिक प्रगति ने भारत सहित तृतीय विश्व के विकासशील देशों के बुद्धिजीवियों और नेताओं को प्रेरित किया।

ब्रिटिश सरकार की नीतियों का विरोध करने वाले कई आमूल परिवर्तनवादी समूहों और युवा संघों का भारत में आविर्भाव हुआ। जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी के अंदर वाम दल बनाया गया। नवम्बर 1928 में *इंडिपेन्डेन्स फॉर इंडिया लीग* नाम का संगठन एस. श्रीनिवास आपंगर के नेतृत्व में बनाया गया। जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चन्द्र बोस दोनों उसे संयुक्त सचिव थे। कांग्रेस के अंदर इस वामपंथी दबाव समूह ने पूर्ण स्वतंत्रता के लिए संकल्प पारित करवाया था। स्वतंत्रता के लिए यह संकल्प पर्याप्त किए जाने के बाद इंडिपेन्डेन्स फॉर इंडिया लीग का धीरे-धीरे विघटन हो गया।

बीसवीं शताब्दी के पहले दो दशकों के दौरान भारत में धर्म, जाति और समुदाय पर आधारित कई राजनीतिक पार्टियाँ अस्तित्व में आई। प्रमुख समाज विज्ञानी, गोपाल कृष्ण के अनुसार "मुखर राजनीतिक संकीर्णवाद - उस समाज का लक्षण है जहाँ मुख्य निष्ठा जाति और समुदाय के इर्द-गिर्द केन्द्रित रहती है, सामाजिक और भौगोलिक गतिशीलता न्यूनतम होती थी और वृहदत्तर राष्ट्रीय समुदाय की जागरूकता द्वारा मनोभावों को प्रबुद्ध नहीं किया जाता है - इसके फलस्वरूप सम्प्रदाय और जाति के आधार पर पार्टियों के निर्माण की प्रारंभिक अवस्था में ही राजनीतिक आधुनिकीकरण में सहभागिता के लिए अपने ही के तरीकों में प्रयास करते हैं।

जन संघ के पूर्ववर्ती संगठन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ (RSS) की स्थापना 1925 में हुई। मद्रास प्रेजिडेन्सी में ब्राह्मण विरोधी आन्दोलन, जस्टिस पार्टी 1917 में अस्तित्व में आई। मुस्लिम लीग और हिन्दू महासभा दोनों 1906 में बनाए गए।

रुस की क्रान्ति के परिणामस्वरूप अधिकांश वामपंथी दल तृतीय विश्व में बनाए गए। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सी पी आई) 1925 में अस्तित्व में आई। यह वाम दल कम्युनिस्ट इंटरनेशनल ऑफ मास्को से सम्बद्ध किया गया था। इसके अतिरिक्त, कई छोटे छोटे दल भी भारत के भिन्न भिन्न भागों में अस्तित्व में आए।

कम्युनिस्ट इंटरनेशनल और ब्रिटिश कम्युनिस्ट पार्टी की सहायता से कम्युनिस्ट पार्टी ने ट्रेड यूनियन आन्दोलनों के क्षेत्र में 1928 में छटे कामिनटर्न तक बहुत प्रगति की। "बुर्जआ राष्ट्रवाद और गांधीवादी अस्त्र के रूप में कांग्रेस की आलोचना की गई, जिसे लेनिन "क्रान्तिकारी" के रूप में मानता था, खुले रूप से क्रान्तिकारी शक्तिरोधी के रूप में कम्युनिस्ट पार्टी जनसमूह से और स्वतंत्रता संघर्ष से भी जुड़ गई। एम. एन. राय को 1929 में कामिनटर्न से निष्कासित किया गया, उसके बाद उसने 1930 में अपना रेडिकल ग्रुप भी आरंभ किया।

1930 और 1932 के दो सिविल अवज्ञा आन्दोलन की असफलता और गोलमेज कान्फ्रेन्स में कांग्रेस के मध्यमार्गी रुख ने बहुत से युवा नेताओं का मोहभंग किया। इस अवधि के दौरान, गांधी ने भी अपना सत्याग्रह आन्दोलन स्थगित कर दिय। और निर्माणात्मक कार्यक्रमों में ध्यान केन्द्रित करना आरम्भ किया। बहुत से कांग्रेसजनों ने इसे महात्मा गांधी के अहिन्सा संघर्ष की विफलता के रूप में लिया। भ्रम के इस वातावरण में 1934 में कांग्रेस पार्टी के अंदर के मार्क्सवादी मुखी संगठन कांग्रेस समाजवादी पार्टी बनाने का प्रयास किया गया।

पंजाब, बंगाल, बनारस और केरल में भी समाजवादी ग्रुप बनाए गए। पुणे में कांग्रेस पार्टी के अंदर ही समाजवादी पार्टी बनाने का काम कमला देवी चट्टोपाध्याय के युसुफ मेहरअली और पुरुषोत्तम त्रिकमदास को सौंपा गया। कांग्रेस समाजवादी पार्टी के निर्माण में जिन अन्य नेताओं ने सहायता की, वे जयप्रकाश नारायण, मीनू मसानी, अशोक मेहता, अच्युत पटवर्धन, एन जी गोरे, एम. एल. दांतवाला, आचार्य नरेन्द्र देव, डा. राम मनोहर लोहिया और एस. एम. जोशी थे। कारावास में रहने के दौरान इन नेताओं ने कांग्रेस समाजवादी पार्टी की रूपरेखा तैयार की। इस प्रकार, नागरिक विरोध आन्दोलन से उत्पन्न भ्रम, संविधानवाद के विकास और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की राष्ट्र विरोधी भूमिका तथा राष्ट्रीय मुख्यधारा से उसके अपवर्तन के परिणामस्वरूप कांग्रेस समाजवादी पार्टी (सी.एस.पी.) का जन्म हुआ था। कुछ समाजवादी आलोचकों का मत है कि यदि भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने अपना गांधी-विरोधी तथा स्वतंत्रता संघर्ष विरोधी मानसिकता नहीं दिखाई होती और कांग्रेस पार्टी पर रूढ़िवादी तत्वों का प्रभुत्व नहीं होता, तो शायद कांग्रेस समाजवादी पार्टी का जन्म कदापि नहीं होता।

चौथे दशक के दौरान जवाहरलाल को समाजवादी दर्शन का महान समर्थक समझा जाता था। कांग्रेस पार्टी का प्रत्येक युवा नेता इसे समाजवाद के प्रतीक के रूप में देखता था। दिसम्बर 1934 को मीनू मसानी के लिए अपने पत्र में नेहरू ने "कांग्रेस और देश की विचारधारा को प्रभावित करने के लिए कांग्रेस के अंदर समाजवादी समूह बनाने" का स्वागत किया था।

1934 तक देश के भिन्न-भिन्न भागों में कई समाजवादी समूह गठित किए गए थे। तब यह अनुभव किया गया था कि इन समूहों को एक समाजवादी मंच के अधीन लाना आवश्यक है। मई 1934 से जयप्रकाश नारायण ने पटना में समाजवादी सदस्यों का सम्मेलन आयोजित किया। उसने बिहार समाजवादी पार्टी को भी पुनर्जीवित किया। इस सम्मेलन में अखिल भारतीय कांग्रेस समाजवादी पार्टी का गठन किया गया। गांधीजी ने नागरिक अवज्ञा आन्दोलन वापस लेने का निर्णय किया और दक्षिणपंथी स्वराज पार्टी को पुनर्जीवित किया गया। इसके फलस्वरूप 1934 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी का गठन हुआ। बी. सी. राय, के.एम. मुंशी, मुलाभाई देसाई और अन्य जैसे स्वराजवादियों के प्रति गांधीजी के प्रशंसात्मक रुख और नागरिक अवज्ञा आन्दोलन वापस लेने के लिए गांधी के निर्णय तथा 18 मई 1934 को पटना बैठक में संसदीय कार्यक्रम आरंभ करने के कारण समाजवादी शक्तियाँ 17 मई 1934 को कांग्रेस समाजवादी पार्टी बनाने के लिए विवशः हुई। कांग्रेस समाजवादी पार्टी का संविधान तथा कार्यक्रम की मसौदा समिति में आचार्य नरेन्द्र देव को अध्यक्ष तथा जयप्रकाश नारायण को संगठन सचिव बनाया गया।

15.3 कांग्रेस समाजवादी पार्टी: कार्यक्रम और नीतियाँ

मई 1934 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी का जन्म भारत के समाजवादी आन्दोलन के इतिहास में एक उल्लेखनीय घटना थी, 1930 की दशाब्दी के प्रारंभ की विचारधारा को फैलाने में मेरठ षडयंत्र मामले को स्मरण करना वांछनीय होगा। इसके अलावा भारत में समाजवादी विचारधारा के विकास में भी 1936 में अखिल भारतीय विकास सभा का गठन और यूथ लीग तथा स्वतंत्रता के लिए भारतीय लीग की भूमिका की भी अनदेखी नहीं की जा सकती है। कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने भारत में सभी समाजवादी समूहों को अखिल भारतीय मंच प्रदान किया। पार्टी के प्रकाशनों तथा समाजवादी नेताओं के लेखों ने देश के भिन्न-भिन्न भागों में भारत के युवाओं को पद दलितों के उत्थान के लिए रचनात्मक कार्य आरंभ करने के लिए प्रेरित किया। अशोक मेहता की *डेमोक्रेटिक सोसलिज्म* और *स्टडीज इन एशियन सोसलिज्म*, आचार्य नरेन्द्र देव की *सोसलिज्म एण्ड नेशनल रिवाल्यूशन*, जयप्रकाश नारायण की *टूवर्डस स्ट्रगल* (1946) और डॉ. राम मनोहर लोहिया की *दि मिस्ट्री ऑफ सर स्टेफार्ड क्रिप्स* (1942) ने भारत में समाजवाद के संदेश फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

1934 के समाजवादी सम्मेलन में यह घोषणा की गई कि पार्टी का बुनियादी उद्देश्य "ब्रिटिश साम्राज्य से पृथक रूप पूर्ण स्वतंत्र और समाजवादी समाज की स्थापना के लिए कार्य करना था।" पार्टी की सदस्यता साम्प्रदायिक संगठनों के सदस्यों के लिए खुली नहीं थी। इसका बुनियादी लक्ष्य स्वतंत्रता के लिए शक्तिशाली जन आन्दोलन के लिए कामगारों तथा किसानों को संगठित करना था। कार्यक्रमों में योजनाबद्ध अर्थव्यवस्था, मुख्य उद्योगों और बैंकों का समाजीकरण, राजकुमारों और जमींदारों द्वारा शोषण का उन्मूलन तथा बुनियादी आवश्यकताओं के क्षेत्रों में सुधार कार्य आरंभ करना शामिल था।

कांग्रेस समाजवादी पार्टी की विचारधारा मार्क्सवाद के सिद्धान्तों, ब्रिटिश लेबर पार्टी के लोकतांत्रिक समाजवाद, और सत्याग्रह और अहिंसा के गांधीवादी सिद्धान्तों का मिश्रित समाजवाद था। पार्टी अपनी प्रारंभिक अवस्था में गहरे मार्क्सवादी विचारों से प्रभाव में थी। कांग्रेस समाजवादी पार्टी के प्रमुख सदस्य भिन्न भिन्न विचारधाराओं के थे। मसानी के अनुसार, "मैं लेबर पार्टी किस्म का निष्ठावान लोकतंत्रवादी हूँ और साम्यवादी क्रियाविधियों या तकनीक के प्रति किंचित सहानुभूति है यद्यपि मैं रुस में अक्टूबर क्रान्ति का अधिक प्रशंसक नहीं हूँ, दूसरी ओर, जयप्रकाश नारायण (जे.पी.) सर्वहारा के अधिनायकता के घोर प्रशंसक था, चाहे उसका कुछ भी अभिप्राय हो। मार्क्सवाद उसके समाजवादी विश्वास की आधारशिला थी।"

गांधी समाजवादी पार्टी के कुछ सदस्य, जैसे आचार्य नरेन्द्र देव और जयप्रकाश नारायण कांग्रेस समाजवादी पार्टी में मार्क्सवादी झुकाव के प्रबल समर्थक थे। 1940 की दशाब्दी में जे.पी. गांधीजी और गांधीवादी समाजवाद के प्रभाव में आए। 1954 में पार्टी राजनीति की कार्य शैली से उनका मोहभंग हो गया। उसने सी एस पी छोड़ दी और सर्वोदय आन्दोलन में चले गए। अन्य नेता, जैसे एम एल दांतवाला, एम आर मसानी, अशोक मेहता और पुरुषोत्तम त्रिकम ब्रिटिश फैबियन समाजवाद के सिद्धान्तों के अनुयायी थे। मसानी ने 1939 में सी एस पी छोड़ दी और स्वतंत्र उद्यम के प्रबल समर्थक बन गए। वह 1959 में स्वतंत्र पार्टी के निर्माण में प्रमुख व्यक्ति था। अच्युत पटवर्धन और डॉ. राम मनोहर लोहिया पार्टी में गांधीवादी वर्गीकरण के अनुयायी थे। पटवर्धन 1950 में जे. कृष्णमूर्ति के अनुयायी बन गए और दलगत राजनीति छोड़ दी। डॉ. लोहिया पूरी तरह से प्रमुख गांधीवादी समाजवादी नेता बने रहे।

कांग्रेस समाजवादी पार्टी के नेताओं में वैचारिक मतभदों का पार्टी की नीतियों, कार्यक्रमों और संगठनात्मक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ा। पार्टी की संगठनात्मक अवस्था में सभी नेता अपने राष्ट्रवाद की प्रबल भावना, सौहार्द और भ्रातृत्व के कारण साथ रहे और उसे यह भी कहा जाता है कि यह उनकी "गहरी व्यक्तिगत मित्रता" भी थी। मधु लिमये के अनुसार वे सभी एक समान शहरी मध्यमवर्ग वर्ग से थे, उच्च शिक्षा प्राप्त पृष्ठभूमि थी। वे युवा और आदर्शवादी भी हों, उनमें प्रबल नैतिकता थी और सत्य और शिष्टता के मूल्यों के लिए सम्मान था। उन सभी नेताओं में जे.पी. सबसे अधिक प्रमुख बंधनकारी कारक था। उसे समाजवादी आन्दोलन के सबसे अधिक महत्वपूर्ण नेता के रूप में माना जाता था। उसकी संगठनात्मक क्षमता और प्रबल, मार्क्सवादी दृष्टिकोण के कारण पार्टी ने गठन की प्रारम्भिक अवस्था में मार्क्सवादी दृष्टिकोण और सिद्धान्तों का अनुसरण किया।

1936 में मेरठ धारणा ने राष्ट्रीय आन्दोलन ने मार्क्सवाद के सिद्धान्तों पर आधारित साम्राज्यवाद विरोधी आन्दोलन अपनाने और विकसित करने पर बल दिया। इस धारणा के अनुसार कांग्रेस में "उसके बुर्जुवा नेतृत्व से साम्राज्यवादी तत्वों को दुर्बल करना तथा क्रान्तिकारी समाजवाद के नेतृत्व के अधीन लाना" आवश्यक था। यह कार्य तभी पूरा हो सकता है यदि कांग्रेस के अंदर ही मार्क्सवादी समाजवादियों का संगठित निकाय हो। "..... मार्क्सवाद अकेले ही अपने अंतिम गंतव्य तक साम्राज्यवाद विरोधी शक्तियों का मार्ग दर्शन कर सकता है। इसलिए पार्टी सदस्यों को क्रान्ति की तकनीक, वर्ग संघर्ष के व्यवहार

के सिद्धान्त, राज्य का स्वरूप और समाजवादी समाज का नेतृत्व करने की प्रक्रिया पूरी तरह से समझनी चाहिए।" यह विचारधारा 1936 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी के फैजपुर सम्मेलन में स्वीकृत हुई।

समाजवादियों ने 1942 में भारत छोड़ो आन्दोलन में और देश के संगठित ट्रेड यूनियन आन्दोलनों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी बढ़ती हुई लोकप्रियता को न तो कांग्रेस के प्रमुख नेताओं ने पसंद किया और न ही साम्यवादियों तथा राजतंत्रवादियों ने। साम्यवादी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध राष्ट्रवादी संघर्ष के अंग नहीं थे। वे समाजवादियों के नेतृत्व के अधीन ट्रेड यूनियन आन्दोलनों की लोकप्रियता भी पसंद नहीं करते थे। उन्होंने फासीवादी और "वाम सुधारवाद" के प्रतीक के रूप में उनकी आलोचना की।

कांग्रेसी नेता कांग्रेस संगठन के अंदर समाजवादियों की भूमिका के प्रति बहुत सहानुभूतिपूर्ण नहीं रखते थे। कांग्रेस के समाजवादियों, विशेषकर कांग्रेस समाजवादी पार्टी के सदस्यों ने 1935 अधिनियम की संवैधानिक व्यवस्थाओं का विरोध किया और राज्यों में चुनावों में भाग लेने के लिए कांग्रेस के निर्णय को पसंद नहीं किया, यद्यपि अंततः आचार्य नरेन्द्र देव जैसे व्यक्तियों ने चुनावों में भाग लिया। 1937 में चुनावों के बाद राज्यों में मंत्रिमंडल बनाने के बारे में कांग्रेस के निर्णय का विरोध भी समाजवादियों द्वारा किया गया। प्रमुख सदस्य, जैसे सी एस पी के जयप्रकाश नारायण इस बात से सहमत थे कि 1948 में यही संवैधानिक व्यवस्था 'कांग्रेस में क्रान्तिकारी समाजवादी पार्टी के नासिक सम्मेलन में अपनी रिपोर्ट में जयप्रकाश नारायण ने कहा, "पीछे मुड़कर देखने पर परन्तु और कई वर्षों के बावजूद मेरा अभी भी विश्वास है, उस समय आफिस स्वीकार किया जाना गलत था। जबकि इससे कोई लाभ नहीं हुआ, इससे कांग्रेस के अंदर सत्ता की राजनीति की मानसिकता उत्पन्न हुई जो अब इसे नकारा करने की धमकी देते हैं।"

जमींदारों के प्रति कांग्रेस संगठन के नरम रुख, रजवाड़ों के बारे में उसकी नीतियाँ और राज्यों में किसान आन्दोलनों के लिए उनका विरोध भी समाजवादियों और कांग्रेस के प्रमुख नेताओं के बीच संबंधों में कटुता उत्पन्न की। कांग्रेस कांग्रेस समाजवादी पार्टी के नेतृत्व में किसान आन्दोलन के प्रति बहुत उदार नहीं थी। वे यहाँ तक गए कि उन्होंने 1938 में हरिपुरा सत्र में एक अधिकारिक संकल्प पारित किया जिसमें अपने सदस्यों को किसान संगठनों से न जुड़ने के लिए कहा गया। गांधीजी के उम्मीदवार पट्टाभि सीता रमैया के विरुद्ध सुभाष चन्द्र बोस की विजय को कांग्रेस नेताओं ने पसन्द नहीं किया। मार्च 1939 में गोविन्द वल्लभ पंत ने कांग्रेस में संकल्प प्रस्तुत किया जिसमें नवनिर्वाचित कांग्रेस अध्यक्ष सुभाषचन्द्र बोस को गांधीजी की सलाह के अनुसार अपनी कार्यकारिणी समिति के सदस्यों को नामित करने के लिए कहा गया था। कांग्रेस समाजवादी पार्टी की इस नाजुक घड़ी में इसके सदस्य बोस के समर्थन के मुद्दे पर विभाजित हो गए। संगठन में जयप्रकाश नारायण और साम्यवादी बोस का समर्थन करना चाहते थे। डॉ. लोहिया, मसानी, अशोक मेहता और युसुफ मेहर अली यह सोचकर बोस को नहीं चाहते थे कि बोस का समर्थन करने के निर्णय से राष्ट्रीय आन्दोलन का ध्रुवीकरण दो कैम्पों में हो सकता है और अंततः ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध राष्ट्रीय संघर्ष कमज़ोर पड़ जाएगा। समाजवादी सदस्यों ने प्रस्ताव पर अनुपस्थित रहने का निर्णय किया, इससे बोस को इतना धक्का लगा कि उसने अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने का और अपनी अलग पार्टी फावर्ड ब्लाक बनाने का निर्णय किया इन सभी घटनाओं ने देश में उभरते हुए समाजवादी शक्तियों के संगठन को कमजोर किया। कांग्रेस समाजवादी पार्टी के नासिक सम्मेलन में मार्च 1948 में समाजवादियों ने अंततः कांग्रेस छोड़ने और भारतीय समाजवादी पार्टी बनाने का निर्णय किया।

1952 में पहले राष्ट्रीय चुनाव के तत्काल बाद समाजवादी पार्टी और जे.वी. कृपलानी की कृषक मज़दूर प्रजा पार्टी (KMPP) ने एक ही पार्टी में विलय करने का निर्णय लिया।

तब भारत में समाजवादी संगठनों के दो मुख्य उद्देश्य थेः (क) वे सामाजिक और आर्थिक पुनर्निर्माण के लिए अखिल भारतीय संगठन के रूप में विकसित करना चाहते थे और (ख) सामाजिक संरचना के कमजोर वर्गों का तथा भारत की राजनीतिक मुक्ति के लिए वैचारिक ढाँचे के रूप में भी विकास करना चाहते थे।

लोकतांत्रिक केन्द्रवाद के बोल्शेविक सिद्धान्त ने स्वतंत्रता प्राप्ति तक कांग्रेस समाजवादी पार्टी के वैचारिक धरातल को बहुत प्रभावित किया। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति और अगले वर्ष गांधीजी की मृत्यु के बाद कांग्रेस समाजवादी पार्टी में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। यह लोकतांत्रिक केन्द्रवाद और मार्क्सवादी क्रियाविधि के साम्यवादी सिद्धान्त से हटकर लोकतांत्रिक समाजवाद की ओर गई। जनाधार प्राप्त करने के लिए भी कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने अपने पिछले वैचारिक ढाँचे और क्रियाविधि को भी हल्का किया। निर्वाचक प्रक्रियाओं के समायोजन, गठबंधन और यहाँ तक कि उन राजनीतिक संगठनों से विलय भी आरंभ किए गए जो न तो लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं पर और न ही राष्ट्रवाद, समाजवाद और लोकतंत्र के सिद्धान्तों पर विश्वास करते थे। क्रान्तिकारी पथ से हटकर यह संसदीय प्रणालियों के गठबंधन दृष्टिकोण की ओर गया।

कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने अधिक गंभीरता से 1949 में पार्टी के पटना अधिवेशन में लोकतांत्रिक समाजवाद के सिद्धान्त को स्वीकार किया। अपनी वैचारिक शुद्धता पर बल देते हुए पार्टी किसानों, गरीबों और श्रमजीवी वर्ग में अपने रचनात्मक कार्यकलाप के बारे में अधिक सावधान थी। अपने 1953 के प्रसिद्ध इलाहाबाद धारणा में पार्टी ने विरोधी दलों से निर्वाचन गठबंधन के लिए जाने का प्रस्ताव किया। परन्तु पार्टी किसी भी राजनीतिक दलों से संयुक्त मोर्चा या गठबंधन के लिए तैयार नहीं थी। पार्टी के गया अधिवेशन के वक्तव्यों में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की पृथक पहचान पर भी जोर दिया गया। पार्टी कांग्रेस से साम्यवादी या हिन्दू कट्टरपंथी पार्टी या संगठन से किसी भी निर्वाचन समायोजन या गठबंधन के लिए इच्छुक नहीं थी। परन्तु 1957 के आम चुनावों के दौरान और उसके बाद नरम रुख अपनाया गया।

1952 में कांग्रेस समाजवादी पार्टी ने समाजवादी विचारधारा से गांधीवादी आदर्शों के अधिक संश्लेषण की जोरदार वकालत की। पार्टी के अध्यक्ष के रूप में डॉ. राम मनोहर लोहिया ने दस्तकारी पर आधारित विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था पर और छोटी-छोटी मशीनों पर आधारित कुटीर उद्योगों तथा छोटी-छोटी मशीनों पर आधारित उद्योगों तथा छोटी पूंजी निवेश से श्रम के अधिकतम प्रयोग पर जोर दिया। मई 1952 में पंचमड़ी समाजवादी सम्मेलन के दौरान डॉ. लोहिया की विचारधारा ने पार्टी के कई समाजवादी नेताओं को प्रभावित नही किया। जून 1953 में अशोक मेहता की "पिछड़ी अर्थव्यवस्था की राजनीतिक विवशता" विचारधारा में समाजवादियों और कांग्रेस पार्टी के बीच अधिक सहयोग की वकालत की गई। अशोक मेहता की विचारधारा को संतुलित करने के लिए डा. लोहिया ने "समान दूरी का सिद्धान्त" प्रस्तुत किया। इस सिद्धान्त में समाजवादी पार्टियों द्वारा कांग्रेस और साम्यवादियों से समान दूरी रखने की वकालत की गई। विचारों की इन दो धाराओं के परिणामस्वरूप कांग्रेस समाजवादी पार्टी दो कैम्पों में विभाजित हो गई। कुछ सदस्यों ने तो पार्टी छोड़कर कांग्रेस में शामिल होने तक की बात सोच ली थी।

कांग्रेस समाजवादी पार्टी के प्रमुख नेताओं में से एक नेता, आचार्य नरेन्द्र देव इस पक्ष में नहीं था कि समाजवादी कांग्रेस में शामिल हों। वह मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त का कट्टर समर्थक था। उसने कहा, "हम अपने सामने के कार्य को तभी कर सकते हैं यदि हम समाजवाद के सिद्धान्त और प्रयोजनों को समझने तथा परिस्थिति की सही समझ के मार्क्स द्वारा प्रस्तुत द्वंद्वात्मक प्रणाली समझने का प्रयास करते हैं और उस समझ को उस सही क्रिया का आधार बनाते हैं, हमें अपना आधार

वैज्ञानिक समाजवाद पर बनाना चाहिए और अव्यावहारिक समाजवाद या सामाजिक सुधारवाद से दूर रहना चाहिए। विद्यमान सामाजिक व्यवस्था के क्रान्तिकारी परिवर्तन के अलावा स्थिति की आवश्यकताओं को पूरा कोई भी पूरा नहीं कर सकता है। वह विश्व के नैतिक शासन और नैतिक मूल्यों की श्रेष्ठता में विश्वास करता था। वह समाजवाद को सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में मानता था। उसने सदैव समाजवाद के मानवतावादी आधार पर बल दिया, वह गांधीवादी दर्शन के अहिंसा का उसकी पूर्णता में नहीं मानता था। वह सदा आर्थिक और वर्ग चेतना के आधार पर जनमानस संगठित कर सामूहिक आन्दोलन का आधार व्यापक बनाने का प्रयास कर रहा था। वह निम्न मध्यम वर्ग और जनसमूह के बीच गठबंधन के पक्ष में था। उसने कहा, "उनमें वर्ग चेतना केवल तभी हो सकती है, जब उन्हें भारत को समझने के लिए "आर्थिक आधार पर अपील की जाती है।" उसने औपनिवेशिक देश के लिए समाजवादी आन्दोलन और राष्ट्रीय आन्दोलनों के बीच गठबंधन की वकालत की। उसने कहा कि राजनीतिक स्वतंत्रता समाजवाद के मार्ग की एक अपरिहार्य अवस्था है।" वे "आम हड़ताल" के संबंध में जार्न सोरेल के सिण्डीकेटवादी सिद्धान्त के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने कहा "रूस के असमान, भारत में, श्रमिक वर्ग की हड़ताल अभी सामूहिक कार्य के लिए संकेत नहीं बना है। परन्तु श्रमजीवी वर्ग तभी अपना राजनीतिक प्रभाव फैला सकता है जब वह राष्ट्रीय संघर्ष के लिए आम हड़ताल को अपने हथियार के रूप में प्रयोग करे, यह हड़ताल की क्रान्तिकारी संभावनाओं के साथ छोटे मध्यम वर्ग को प्रभावित कर सकता है।

स्वतंत्रता पूर्व अवस्था में समाजवादी आन्दोलन के दौरान, बाद में 1940 में, 50 के और 60 के दशकों के दौरान कृषि उपज बढ़ाने के लिए सहकारिता, भूमि चकबंदी, बेरोज़गारी कम करने और शोषित दलित समुदायों का जीवन स्तर उठाने पर अधिक बल दिया गया था। समाजवादी पार्टी ने सदा प्रशासन से न्यायपालिका को पृथक् करने और बलवंत राय मेहता समिति की रिपोर्ट के अनुसार उसके विकेन्द्रीकरण की वकालत की। भारत में समाजवादी विचारधारा का आधारभूत दर्शन धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीयता और लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया के संश्लेषण पर आधारित था।

15.4 डा. राम मनोहर लोहिया की समाजवादी विचारधारा

राम मनोहर लोहिया ने अपना दृष्टिकोण जिस प्रकार स्पष्ट किया उसे "सात क्रान्तियाँ" कहा जाता है, जैसे पुरुष और महिला के बीच समानता, रंग पर आधारित राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक असमानता के विरुद्ध संघर्ष, परम्पराओं पर आधारित पिछड़े और उच्च जातियों के बीच असमानता का निराकरण, और पिछड़े वर्गों के लिए विशेष अवसर, भिन्न भिन्न रूपों में विदेशी दासता के विरुद्ध उपाय, आर्थिक समानता, योजनाबद्ध उत्पादन और पूंजीवाद की समाप्ति, व्यक्तिगत जीवन पर अनुचित हस्तक्षेप का विरोध, हथियारों का अप्रसार और सत्याग्रह पर आस्था ये उनके विचारों के बुनियादी तत्व थे। मार्क्स, गांधी और समाजवाद पर अपनी पुस्तक में, लोहिया में रचनात्मक कार्यक्रमों के सफल कार्यान्वयन के उपर्युक्त दर्शन के रूप में लोकतांत्रिक समाजवाद के सिद्धान्तों का विश्लेषण किया। उन्होंने कहा, "समाजवाद के प्रति संरक्षणवाद और साम्यवाद ने हितों की विचित्र पहचान है। साम्यवाद रूढ़िवादी सरकार की अवस्थिति को तरजीह देती है और समाजवादी पार्टी के सत्ता में आने की भयभीत होती है, क्योंकि तब विद्रोह के इसके अवसर समझे जाते हैं।"

भारत में समाजवादी विचारधारा के क्षेत्र में लोहिया ने महत्वपूर्ण योगदान किया। वे सदा समाजवादी विचारधारा से गांधीवादी आदर्शों के समिश्रण पर अधिक जोर देते थे। वे इतिहास के चक्रीय सिद्धान्त के प्रस्तावक थे। उनका विश्वास था कि लोकतांत्रिक समाजवाद के सिद्धान्तों के माध्यम से विकासशील देश उन्नत हो सकता है। यद्यपि डा. लोहिया द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के समर्थक थे परन्त उन्होंने जागरूकता पर अधिक बल दिया। उनकी राय थी कि वर्ग और जाति के बीच आंतरिक दोलन के

माध्यम से देश की ऐतिहासिक गतिशीलता सुनिश्चित की जा सकती है। डा. लोहिया के अनुसार वर्ग सामाजिक परिवर्तनशीलता की प्रक्रिया का निरूपण करता है और जातियाँ रूढ़िवादी शक्तियों के प्रतीक हैं। उन्होंने कहा, समस्त मानव इतिहास सदा जाति और वर्गों के बीच आंतरिक स्थानांतरण करता रहा है, वर्गों में जाति मुक्त होती है और वर्ग जातियों का रूप ग्रहण करते हैं। वे विकेन्द्रीकृत समाजवाद के प्रस्तावक थे। उनके अनुसार मशीनें, सहकारी श्रमिक और ग्रामीण शासन पूंजीवादी शक्तियों के विरुद्ध लोकतांत्रिक शक्ति के रूप में कार्य करती है। वे रूढ़िवादी और संघटित समाजवाद को "मृत सिद्धान्त और मरणासन्न संगठन" मानते हैं।

लोहिया अपने चार स्तम्भ राज्य (फोर पिलर स्टेट) अवधारणा के लिए बहुत प्रसिद्ध थे। वे ग्राम, मंडल (जिला), प्रान्त और केन्द्रीय सरकार को राज्य के चार स्तम्भों के रूप में मानते थे। वे गाँवों के पास पुलिस और कल्याण कार्य होने के समर्थक थे।

उन्होंने 1959 में हैदराबाद में नए समाजवाद के अपने सिद्धान्त की घोषणा की। इस सिद्धान्त के छह बुनियादी तत्व थे। वे आय और व्यय, बढ़ती हुई पारस्परिक निर्भरता के क्षेत्रों में समतावादी मानक, वयस्क मताधिकार के आधार पर विश्व संसदीय प्रणाली, निजी जीवन के अधिकार सहित लोकतांत्रिक स्वतंत्रता, व्यक्तिशः और सामूहिक नागरिक अवज्ञा की गांधीवादी तकनीक, और आम आदमी का सम्मान तथा अधिकार थे। 1952 में पंचमढ़ी सम्मेलन के अपने सम्बोधन में उन्होंने कहा, "आधुनिक जीवन के तनाव और रिक्तता पर विजय पाना कठिन प्रतीत होता है, चाहे पूंजीवाद या साम्यवाद में हो, स्तर उठाने की लालसा, उनकी जन्मदाता है दोनों में समान रूप से है। पूंजीपति पूर्ण प्रतियोगिता के अधीन कार्य करके प्रत्येक व्यक्ति के हितों से अपना आदर्श साम्राज्य उत्पन्न करने की आशा करते हैं। साम्यवादी अभी भी उत्पादन के माध्यमों पर सामाजिक स्वामित्व प्राप्त कर अपने आदर्श साम्राज्य प्राप्त करने की आशा करते हैं। उनके सामान्य दोष ने अब दिखाया है कि समाज के आम लक्ष्य अनिवार्यतः किसी आर्थिक लक्ष्यों के परिणाम नहीं होते हैं। लक्ष्यों के दो सेटों के बीच समाकलित संबंध मनुष्य की बुद्धिमता से स्थापित किए जाने चाहिए।

लोहिया ने नई सभ्यता के रूप में समाजवाद की वकालत की जिसे मार्क्स के शब्दों में "समाजवादी मानवतावाद" कहा जा सकता है। उन्होंने भारत के समाजवादी आन्दोलन को नई दिशा और आयाम दिया उन्होंने कहा कि भारत की विचारधारा को उसकी संस्कृति, परम्पराओं और इतिहास के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। भारत में लोकतांत्रिक समाजवादी आन्दोलन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सर्वांगी सुधार प्रक्रिया के माध्यम से जाति प्रथा समाप्त करने पर मुख्य बल दिया जाए। जाति प्रथा का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा, "वे सभी सोचते हैं कि आधुनिक अर्थव्यवस्था द्वारा गरीबी की समाप्ति से ये वियोजन स्वतः ही लुप्त हो जाएँगे, बड़ी गलती करते हैं। उन्होंने प्रायः तृतीय विश्व के देशों के आर्थिक पुनर्निर्माण और विकास के लिए पूंजीवाद की अप्रासंगिकता को उजागर किया।

लोहिया के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और वैचारिक मुद्दों के लिए मात्र सिद्धान्तवादी दृष्टिकोण ने विरोध किया। वे चाहते थे कि राज्य शक्ति लोगों की शक्ति द्वारा नियंत्रित, मार्गदर्शित और निर्मित की जानी चाहिए और शासन के साधन के रूप में लोकतांत्रिक समाजवाद और अहिंसात्मक क्रियाविधि पर विश्वास करते थे।

लोहिया पर लियान ट्रोटस्की के "स्थायी क्रान्ति" सिद्धान्त का बहुत गहरा प्रभाव था। उन्होंने अन्याय के विरुद्ध शान्तिपूर्ण विद्रोही के रूप में "स्थायी नागरिक अवज्ञा" की अवधारणा का उपदेश दिया तथा स्वयं उन पर अमल किया। उनके लिए सामाजिक क्रान्ति का मूल तत्व कारावास, कुदाल और मतदान से प्राप्त किया जा सकता है। "तात्कालिकता" का उनका सिद्धान्त युवकों में बहुत प्रसिद्ध था। वे चाहते

थे कि संगठन और कार्य समानान्तर धाराओं के रूप में जारी रहने चाहिए और "रचनात्मक आंतकवाद" तथा उसने "उग्रता निर्माण का दृढ़ता से वकालत की।"

लोहिया का विश्वास था कि कोई भी एक विचारधारा किसी भी आन्दोलन के लिए संदर्भ के रूप में प्रयोग नहीं हो सकता है। यद्यपि वे मार्क्स के द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के पक्ष में थे, वे उसकी सीमाओं से परिचित थे। उन्होंने इतिहास के विकास के महत्वपूर्ण तत्वों के रूप में आर्थिक कारकों और मानवीय इच्छा दोनों पर बल दिया। वे स्वीकार करते थे कि "घटनाओं का तर्क" और "इच्छा का तर्क" इतिहास के मार्ग को नियंत्रित करेगा।

वे इस मार्क्सवादी सिद्धान्त से सहमत नहीं थे कि औद्योगिक रूप से विकसित समाजों में क्रान्तियाँ होनी चाहिए; यह केवल उत्पादन की शक्तियों से संबंध परिवर्तन करने का प्रयास करता है। ऐसी प्रक्रिया भारत में विद्यमान दशाओं के लिए अनुपयुक्त है। वे लघु प्रौद्योगिकी और विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था की वकालत करते थे। उनके लिए निर्धारणवाद का सिद्धान्त परम्पराबद्ध भारतीय समाज के लिए समाधान है जहाँ वर्ग-भेद और जाति स्तरीकरण सामान्य नियम है। वर्ग संघर्ष की मार्क्सवादी सिद्धान्त भारत की जटिल सामाजिक संरचना का समाधान नहीं है।

लोहिया का विश्वास था कि "कल्याणकारी राज्यवाद" की अवधारणा तृतीय विश्व के देशों की सामाजिक और आर्थिक प्रगति का उत्तर नहीं था। वर्ग संघर्ष की मार्क्सवादी अवधारणा में कृषकों के लिए कोई स्थान नहीं था क्योंकि वे "सम्पत्ति के स्वामी और उनके भोजन के लिए ऊँची कीमतें लेकर उन का शोषणकर्त्ता था।" डॉ. लोहिया सदैव देश के आर्थिक राजनीतिक और सामाजिक विकास में कृषकों की भूमिका पर बल देते थे। उनके अनुसार "निस्संदेह अन्यत्र की भांति भारत में किसानों को बड़ी भूमिका निभानी है जो किसी अन्य की अपेक्षा अधिक बड़ी है परन्तु अन्यों को भी बराबर की भूमिका अदा करनी है। किसानों और कामगारों तथा कारीगरों और शहरी गरीबों के बीच सहयोगात्मक गठबंधन की चर्चा के स्थान पर क्रान्ति में बराबरी के संबंध की अवधारणा होनी चाहिए।" उसने सभी प्रकार के अन्यायों के विरोध में नागरिक अवज्ञा आन्दोलनों के लिए और नई विश्व व्यवस्था सृजन करने के लिए आह्वान किया।

लोहिया का यह भी विचार था कि सार्वदेशिक पुरुष प्रधानता और आपत्तिजनक जाति व्यवस्था भारत की सामाजिक संरचना की दो बुनियादी दुर्बलताएँ हैं और सभी स्तरों पर इनके उन्मूलन की वकालत की, "देश में सभी राजनीतिक कांग्रेस, साम्यवादी, या समाजवादी राष्ट्रीय सहमति का बहुत बड़ा क्षेत्र है, चाहे यह अभिकल्पना द्वारा हो या रीति रिवाज के माध्यम से हो और कि शूद्रों और महिलाओं को नीचे रखना है और दोनों हमारी सम्पूर्ण जनसंख्या के तीन चौथाई से अधिक है।" उन्होंने इन सामाजिक बुराइयों के उन्मूलन के लिए युवा वर्ग को सामाजिक पुनर्निर्माण प्रक्रिया में आगे आने की अपील की। उन्होंने कहा, "मेरा विश्वास है कि जाति और महिलाओं को दो विभाजन मुख्यतया भावना के इस ह्रास के लिए उत्तरदायी हैं। ये विभाजनों में जोखिम और प्रसन्नता के लिए सभी को समाप्त करने की पर्याप्त शक्ति है।" गरीबी और ये सामाजिक विभाजन आपस में जुड़े हुए हैं और "एक-दूसरे की दुर्बलताओं पर" फल-फूल रहे हैं। उन्होंने जोर देकर कहा, "गरीबी पर सभी युद्ध तब तक शर्मनाक हैं जब तक इन दोनों विभाजनों पर एक साथ सजग और वहनीय युद्ध नहीं होता है।"

लोहिया ने कहा, धर्म और राजनीति आपस में बहुत गहरे जुड़े हुए हैं और उनकी जड़ भी एक ही है। यद्यपि धर्म और राजनीति का अधिकार क्षेत्र पृथक् पृथक् हैं परन्तु दोनों का गलत संयोजन दोनों को विकृत करता है। उनका यह भी विचार था कि राजनीतिक प्रणाली की आधारिक संरचना विकसित करने के लिए धर्म और राजनीति दोनों का प्रयोग तर्क संगत ढंग से किया जा सकता है। उन्होंने कहा, "धर्म दीर्घकालिक राजनीति है और राजनीति अल्पकालिक धर्म है। धर्म को कल्याण के लिए और

अच्छाई की प्रशंसा करने के लिए काम करना चाहिए। राजनीति को बुराई से लड़ने के लिए और उसकी निन्दा करने के लिए किया जाना चाहिए। जब धर्म कुछ भला करने के बदले केवल स्वयं की अच्छाई की प्रशंसा करने में सीमित हो जाता है तो यह निर्जीव हो जाता है और जब राजनीति बुराई से लड़ने के बदले केवल उसकी निन्दा करती है तो यह कलहप्रिय हो जाती है। परन्तु वास्तविकता यह है कि राजनीति और धर्म का विवेकहीन मिश्रण उनमें से दोनों को विकृत करता है। किसी भी धर्म विशेष को किसी खास राजनीति से अपने आपको नहीं जोड़ना चाहिए। यह साम्प्रदायिक धर्मान्धता उत्पन्न करता है। राजनीति को धर्म से पृथक रखने की आधुनिक विचारधारा का मुख्य प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है, कि साम्प्रदायिक कट्टरता उत्पन्न न हो। एक अन्य विचार यह भी है कि राजनीति और धार्मिक व्यवस्था में दंड देने की शक्ति पृथक् रखी जानी चाहिए अन्यथा यह संरक्षणवाद और भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन दे सकता है। उपर्युक्त सभी सावधानियों को ध्यान में रखते हुए यह और भी अधिक आवश्यक हो जाता है कि धर्म और राजनीति एक-दूसरे के पूरक होने चाहिए, परन्तु उन्हें एक-दूसरे के अधिकार क्षेत्र का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए।

समाजवादी विचारक और सक्रियतावादी के रूप में लोहिया ने भारतीय समाजवादी विचारधारा और आन्दोलन के इतिहास में अपना विशेष स्थान बनाया है। यद्यपि समकालीन कुछ अनुसंधानकर्त्ताओं में उसे कैण्ट, हेगेल या काम्टे की परम्परा में शैक्षिक प्रणाली निर्माण के रूप में उसे मान्यता न देने की प्रवृत्ति रही है, एकीकृत परिदृश्य के रूप में विचारधारा को देखने के लिए, अब उनका लोकतांत्रिक दृष्टिकोण सम्पूर्ण विश्व में व्यापक रूप से स्वीकार किया जा रहा है।

15.5 जयप्रकाश नारायण की समाजवादी विचारधारा

जयप्रकाश नारायण सामान्यतया जे.पी. के नाम से जाने जाते थे, 1929 में पक्के मार्क्सवादी थे। 1940 के दशक के मध्य तक वह गांधीवादी विचारधारा की ओर झुके। 1952 तक जे.पी. को सामाजिक परिवर्तन प्रक्रिया के साधन के रूप में अहिंसा पर विश्वास नहीं था। 1920 के दशक के अंत में रुसी समाज के परिवर्तन ने उसके बाद मार्क्सवाद और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के प्रति उसके दृष्टिकोण को बदल दिया। अब समाजवादी समाज के लिए रुस उसका आदर्श मॉडल नहीं रहा। लाल सेना, गुप्त पुलिस और बन्दूक के साथ नौकरशाही युक्त तानाशाही ने विकास के लिए सोवियत पैटर्न के प्रति स्वाभाविक अरुचि पैदा हुई। उन्हें विश्वास हो गया कि इससे "संतोषजनक, मातृत्व और सभ्य मानव" उत्पन्न नहीं किया है। उन्होंने 1947 में कहा, "हिंसात्मक क्रान्ति का तरीका और तानाशाही समाजवादी लोकतंत्र की ओर ले जा सकता है परन्तु केवल उसी देश में, जहाँ (अर्थात् सोवियत संघ) इसे आजमाया गया है, इसके कुछ भिन्न परिणाम हुए हैं अर्थात् नौकरशाही राज्य जिसमें आन्दोलन विद्यमान नहीं है। मैं इतिहास से शिक्षा लेना चाहता हूँ।"

जे.पी. को यह विश्वास हो गया था कि क्रान्ति के स्वरूप और उसके भावी प्रभाव के बीच पारस्परिक संबंध था। उन्हें यह भी विश्वास हो गया था कि हिंसात्मक क्रान्ति का कोई भी पैटर्न आधार स्तर पर लोगों का सशक्तीकरण नहीं कर सकेगा। उन्होंने कहा, "सोवियत क्रान्ति के दो भाग हैं: समाज की पुरानी व्यवस्था का विनाश और नए का निर्माण। सफल हिंसात्मक क्रान्ति में सफलता तभी होती है जब पुरानी व्यवस्था को जड़ से ही समाप्त किया जाता है। यह वास्तव में बहुत बड़ी उपलब्धि है। परन्तु उस अवस्था में कुछ महत्वपूर्ण होता है जो प्रायः अनुवर्ती प्रक्रिया को उलझा देता है। क्रान्ति के दौरान व्यापक पुनर्गठित क्रान्तिकारी हिंसा होती है। जब उस हिंसा को अन्य ऐसे कारकों द्वारा सहायता की जाती है जिसपर यहाँ चर्चा करना आवश्यक नहीं है। जब पुरानी शक्ति संरचना को नष्ट करने में सफल हुए हैं, तब असंगठित सामूहिक हिंसा को बंद करने के लिए, चिल्लाना आवश्यक हो जाता है, इससे क्रान्ति को बचाने और उसकी रक्षा करने के लिए हिंसा से संगठित उपाय निकाले जाते हैं। इस प्रकार

शक्ति को नया साधन बनाया जाता है और क्रान्तिकारियों में से जो भी इस साधन को ग्रहण करने में सफल होता है, वे और उनकी पार्टी या गुट नया शासक बन जाता है। वे नए राज्य के मालिक बन जाते हैं और लोगों के हाथों से उनके पास सत्ता आ जाती है। सत्ता के शीर्ष के लिए सदा संघर्ष होता है, इसमें कई मारे जाते हैं, रक्तपात होता है, अंत में विजय सबसे अधिक निष्ठुर और सबसे अधिक सुसंगठित होती है। यह हिंसात्मक क्रान्तिकारियों के धोखे और विश्वासघात की नहीं है, यह स्वतः उत्पन्न होने वाली हिंसा का तर्क है। यह अन्यथा नहीं हो सकती है।"

जे.पी. मानव विकास के संबंध में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का बहुत अधिक आलोचक थे। उन्हें विश्वास था कि यह तरीका मनुष्य के आध्यात्मिक विकास को प्रभावित कर सकता है। संपूर्ण क्रान्ति की उसकी अवधारणा साकल्यवादी थी। उन्होंने, इस शब्द का प्रयोग पहली बार 1969 में "*दी टाइम*" ना की ब्रिटिश पत्रिका में किया। गांधीवाद की अवधारणा अहिंसा और सत्याग्रह पर बल देते हुए उसने कहा, "गांधीजी की अहिंसा केवल कानून व व्यवस्था की दलील नहीं है या यथास्थिति बना रखने का आवरण है; बल्कि क्रान्तिकारी दर्शन है। वास्तव में यह सम्पूर्ण क्रान्ति का दर्शन है क्योंकि यह व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता तथा जीवन के मूल्यों को उतना ही ग्रहण करता है जितना आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएँ और प्रक्रियाएँ करती हैं।"

जे.पी. द्वारा यथा प्रतिपादित पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा सात क्रान्तियों, अर्थात् सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, वैचारिक और बौद्धिक, शैक्षिक तथा आध्यात्मिक संबंधी उसके विचारों का संगम है। जे.पी. इन क्रान्तियों की संख्या के बारे में बहुत कठोर नहीं थे। उन्होंने कहा कि सात क्रान्तियों का राजनीतिक प्रणाली में सामाजिक संरचनाओं की माँग के अनुसार समूहीकृत किया जा सकता है। उन्होंने कहा, "उदाहरण के लिए सांस्कृतिक क्रान्ति में शैक्षिक और वैचारिक क्रान्तियाँ शामिल की जा सकती हैं। और यदि संस्कृति को मानव विज्ञान की दृष्टि से प्रयुक्त किया जाता है तो यह अन्य सभी क्रान्तियों को ग्रहण कर सकता है।" उन्होंने कहा, "आर्थिक क्रान्ति को औद्योगिक, कृषि, प्रौद्योगिकीय क्रान्तियों आदि में विभाजित किया जा सकता है। इसी प्रकार बौद्धिक क्रान्तियों को दो - वैज्ञानिक और दार्शनिक - में विभाजित किया जा सकता है। यहाँ तक कि आध्यात्मिक क्रान्ति को नैतिक और आध्यात्मिक निर्माण के रूप में भी देखा जा सकता है अथवा इसे संस्कृति के भाग के रूप में भी देखा जा सकता है और इसी प्रकार "पूर्ण क्रान्ति की अवधारणा गुजरात और बिहार में सामूहिक आन्दोलनों के परिणामस्वरूप 1974 में लोकप्रिय हुई। वे उस समय की भारतीय राजनीति में गिरावट की राजनीतिक प्रक्रिया से बहुत क्षुब्ध थे। 1970 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में अपने दीक्षान्त भाषण के दौरान उन्होंने कहा, "यद्यपि राजनीति इस दशक की सबसे बड़ा प्रश्न चिह्न बन गया है। कुछ प्रवृत्तियाँ सुस्पष्ट हैं राजनीतिक विघटन फैलने की संभावना है, पार्टियों का विभाजन स्वार्थ के लिए हो रहा है जबकि उनका वैचारिक ध्रुवीकरण जारी रहेगा, विचारधाराओं का अवमूल्यन जारी रह सकता है, व्यक्ति के लिए पार्टी वफादारी बार बार बदलती है या संकीर्ण लाभों, विधायकों का क्रय-विक्रय, आंतरिक पार्टी अनुशासन, पार्टियों में अवसरवादी गठजोड़ और सरकारों की अस्थिरता से सभी जारी रहने की संभावना है।"

जे.पी. लोकतांत्रिक प्रक्रिया के विकृति राजनीतिक भ्रष्टाचार और हमारे सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्य की गिरावट से अत्यधिक क्षुब्ध थे। उन्होंने कहा कि यदि प्रशासनिक प्रक्रिया का यह पैटर्न जारी रहता है तब कोई समाजवाद, कल्याणवाद, सरकार, सार्वजनिक व्यवस्था, न्याय, स्वतंत्रता, राष्ट्रीय एकता और संक्षेप में कोई राष्ट्र नहीं होगा। उसने कहा, "किसी भी वाद के लिए कोई अवसर नहीं हो सकता है, ऐसी लोकतांत्रिक प्रणाली के अधीन लोकतांत्रिक समाजवाद, न्याय, जातिहीन, सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की स्थापना के लिए सतत संघर्ष का प्रतीक होता है जिसमें व्यक्ति को उचित परिवेश मुहैया किया जाता है।" 5 जून, 1974 को पटना में अपने सम्बोधन में उन्होंने कहा, "यह क्रान्ति

है, पूर्ण क्रान्ति हैं। यह केवल विधानसभा भंग करने के लिए आन्दोलन नहीं है। हमें दूर, बहुत दूर जाना है।"

अगस्त 1976 में अपने मित्र को एक पत्र में जे.पी. ने पूर्ण क्रान्ति के स्वरूप को स्पष्ट किया था। उन्होंने लिखा, "पूर्ण क्रान्ति स्थायी क्रान्ति है। यह हमेशा चलता रहेगा और हमारे व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को बदलता रहेगा। यह क्रान्ति कोई विराम, कोई विश्राम, निश्चित रूप से कोई पूर्ण विश्राम नहीं जानता है। वास्तव में परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार इसका रूप बदलेगा, इसके कार्यक्रम बदलेंगे, इसकी प्रक्रिया बदलेगी। उपयुक्त समय में नई शक्तियों की लहर हो सकती है जो परिवर्तन के पहियों को आगे धकेलेगा। संपूर्ण क्रान्ति के सैनिकों की ऐसे उपयुक्त समय की प्रतीक्षा करनी चाहिए और कार्य के लिए अपने कार्यक्रमों में निश्चित रूप से व्यस्त रहना चाहिए।"

जे.पी. की पूर्ण क्रान्ति में कृषकों, कामगारों, हरिजनों, जनजाति के लोगों और वास्तव में सामाजिक संरचना के सभी कमजोर वर्गों का विकास अंतर्निहित है। वे सदैव भारत के लोकतांत्रिक प्रणाली के सशक्तिकरण तथा सुदृढ़ीकरण का इच्छुक रहे हैं। वे निर्णय करने की प्रक्रिया के सभी स्तरों पर लोगों की सहभागिता चाहते थे। वे चाहते था कि निर्वाचित प्रतिनिधियों को अपने मतदाताओं के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए न कि पाँच वर्षों में एक बार, परन्तु यदि पाँच वर्षों के अपने कार्यकाल की समाप्ति से पहले अनुपयुक्त है तो उसे बदला जाना चाहिए। राजनीतिक प्रतिनिधि जनता के प्रति लगातार उत्तरदायी होने चाहिए। वह देश की चुनाव प्रक्रिया में काले धन की भूमिका रोकने के लिए राजनीतिक प्रणाली में निर्वाचक सुधार किया जाना चाहता था। उसने कहा कि कुछ प्रकार की मशीनरी स्थापित की जानी चाहिए जिसके माध्यम से उम्मीदवारों को खड़ा करने के बारे में परामर्श किया जा सके। इस मशीनरी को अपने प्रतिनिधियों पर नज़र रखने और उनसे अच्छे और ईमानदार कार्य निष्पादन की माँग करनी चाहिए।" निर्वाचित प्रतिनिधियों को वापस बुलाने का अधिकार भी यदा कदा दुरुपयोग हो सकता है। परन्तु लोकतंत्र में हम लोगों को अपने बुनियादी अधिकारों को इनकार कर समाया हल नहीं करते हैं। यदि संवधान विशेषज्ञ इस समस्या पर अपना दिमाग लगाएँ तो अंततः समाधान ढूंढ़ा जा सकता है।"

जयप्रकाश नारायण भारतीय राजनीतिक प्रणाली में भ्रष्टाचार की वृद्धि से बहुत विक्षुब्ध थे। उन्होंने कहा, "मैं जानता हूँ, राजनीति संतों के लिए नहीं है। जिसे इसे पार नहीं करना चाहिए।" यह जेपी का पीपल्स चार्टर का प्रमुख बिन्दु था, जिसे उन्होंने 6 मार्च 1975 को संसद में प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा, "भ्रष्टाचार हमारे राजनीतिक जीवन के गर्म स्थानों की खा रहा है। यह विकास को अस्तव्यस्त कर रहा है, प्रशासन को दुर्बल बना रहा है और सभी कानूनों तथा विनियमों का उपहास कर रहा है। यह लोगों के विश्वास को क्षीण बना रहा है और सभी कानूनों तथा विनियमों का उपहास कर रहा है। यह लोगों के विश्वास को क्षीण कर रहा है तथा उनकी लोकप्रसिद्ध सहनशीलता को समाप्त कर रहा है।"

जे.पी. आधार स्तर पर जन समितियों का नेटवर्क स्थापित करना चाहते थे। जो लोगों की समस्याओं और विकास के कार्यक्रमों का ध्यान रख सकें। वे आर्थिक और राजनीतिक शक्तियों का संयोजन देना चाहते थे। उन्होंने कहा, "कृषि विकास, न्यायसंगत भूमि स्वामित्व, कृषि के लिए समुचित प्रौद्योगिकी का प्रयोग जैसे उन्नत श्रमिक, औज़ार और यंत्र ..... घरेलू और ग्राम उद्योगों का विकास तथा छोटे-छोटे उद्योगों का विशालतम संभव विस्तार पर गांधीवादी ढाँचे पर बल दिया जाए।"

जे.पी. के अंत्योदय कार्यक्रम का अर्थ अंतिम व्यक्ति की उन्नति उसकी समाजवादी विचारधारा का अनिवार्य पहलू था। उन्होंने 21 मार्च, 1977 को एक वक्तव्य में कहा था, बापू ने हमें एक अच्छा मानदंड दिया। जब कभी आपको खास निर्णय लेने में सदेह हो तो सबसे अधिक गरीब की शक्ल याद करें और सोचे कि यह उसे कैसे प्रभावित करेगा। सम्भवतः यह मानदंड उसके सभी कार्यों का

मार्गदर्शन करें।" काम को अधिकार संपूर्ण क्रान्ति के संबंध में उसकी अवधारणा का अभिन्न अंग था, उसने कहा, "एक बार यदि इस नैतिक बाध्यता को स्वीकार कर लेती है, तो इसका अभिप्राय सभी को रोज़गार प्रदान करना होगा। ऐसा कहना इतना कठिन नहीं है।" जे.पी. सामाजिक सुधारों के बारे में भी सावधान थे, जैसे दहेज प्रथा का उन्मूलन, हरिजनों की स्थिति का सुधार और भारत की राजनीतिक प्रणाली में जाति प्रथा का उन्मूलन।

आदर्श राज्य के बारे में अपनी अवधारणा का विश्लेषण करते हुए उसने 1977 में कहा कि "मेरे स्वप्न का विचार की कल्पना ऐसा समुदाय है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक संसाधन दुर्बल की सेवा करने के लिए समर्पित किया जाता है। समुदाय अंत्योदय के लिए समर्पित हो, न्यूनतम और दुर्बलतम की भलाई के लिए समर्पित हो। यह ऐसा समुदाय है जिसमें व्यक्तियों को उनके मानवता के लिए आंका जाता है, समुदाय को, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को उसकी अंतः शक्ति के अनुसार कार्य करने का अधिकार हो, उसकी पहचान हो और सभी उसका सम्मान करते हैं। संक्षेप में, मेरा स्वप्न स्वतंत्र, प्रगतिशील और गांधीवादी भारत है।

मीनू मसानी ने कहा, "जे.पी. के जीवन के समस्त उतार-चढ़ाव और टेड़े-मेड़े मार्ग में आदि से अंत तक अहिंसा का अभिप्राय पूर्ण क्रान्ति रही है।" जे.पी. ने अपने सम्पूर्ण कैरियर में जन-आन्दोलन के क्षेत्र में छात्रों और युवकों की भूमिका को महत्व दिया। उन्होंने कहा, "क्रान्ति उनके द्वारा नहीं लाई जाती है, जो शक्ति और सत्ता की दौड़ में लगे होते हैं, चाहे यह सरकार में हो या ग़ैर-सरकारी संगठन में हों। उनके द्वारा भी नहीं जो अपने परिवारों के भरण-पोषण के भार में पहले से ही पूरी तरह से दबे हुए हों और कोई भी जोखिम भरा कदम नहीं उठाना चाहते हैं। केवल देश के युवक इन दबावों से मुक्त हैं। उनमें आदर्शवाद है, उनमें उत्साह है और उनमें बलिदान करने की ऐसी क्षमता है जिससे अधिक आयु के व्यक्ति पीछे हटते हैं।" अगस्त 1976 में युवक को लिखे अपने पत्र में उसने कहा था, "सम्पूर्ण क्रान्ति के लिए लम्बा और अंतहीन युद्ध के नए नेतृत्व एक आवश्यकता है, इतिहास की शक्तियाँ आपके साथ हैं। इसलिए पूरे विश्वास से आगे बढ़ो। विजय निश्चित रूप से आपकी है।" अपने सम्पूर्ण जीवन काल में जे.पी. ने मनुष्यों को दृश्य के केन्द्र में रखने का प्रयास किया। जे.पी. ने कहा था, "ऐसे समाज में, जिसे मैंने भविष्य के लिए देखा है, मनुष्य को केन्द्रीय स्थान में रहना चाहिए, संगठन को मनुष्य के लिए होना चाहिए और किसी स्थान में नहीं। उससे मेरा अभिप्राय है कि सामाजिक संगठन ऐसा होना चाहिए जो उसके अपनी आंतरिक स्वभाव के अनुसार विकास कर सकें और बढ़ सकें, ऐसा समाज जो केवल मानव प्राणी के रूप में मनुष्य के सम्मान में विश्वास करता है और इस पर व्यवहार भी करता है।"

15.6 सारांश

प्रायः यह कहा जाता है कि भारतीय समाजवादी साहित्य ने वैसी गहराई और सैद्धान्तिक परिवक्वता प्राप्त नहीं है जैसी प्लेखानोव, या बुखेरिन या रोजा लक्जमबर्ग ने अर्जित की है। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय समाजवादी विचारधारा का महत्व कृषक के संदर्भ में जातिबद्ध भारत की विकसित अर्थव्यवस्था और राजनीति के अधीन मौलिक सामाजिक चिन्तन की आवश्यकताओं पर इसका महत्व निहित है। जर्मन मार्क्सवादी कृषकों को प्रतिक्रियावादी तत्व मानते हैं। भारत में समाजवादी विचारधारा ने समाजवाद के संरचनात्मक विकास में कृषकों की भूमिका को महत्व दिया है। भारत के समाजवादी भारतीय समाज के विद्यमान वर्ग और जाति संघर्ष को समाप्त करने के इच्छुक थे। वास्तव में उन्होंने भारतीय समाज की बुनियादी समस्याओं, पर कुछ मौलिक चिन्तन किया - जैसे कृषकों की भूमिका, जाति संघर्ष और अविकसित में योजना निर्माण। वे अहिंसा और सत्याग्रह के गांधीवादी सिद्धान्तों पर

बल देने के साथ राजनीतिक स्वतंत्रता तथा आर्थिक पुनर्निर्माण का संश्लेषण करना चाहते थे। यह वास्तव में भारतीय समाजवादी विचारधारा को उनका योगदान है।

उस समय जब राजनीतिक प्रक्रिया के अत्यधिक सत्तावाद की वृद्धि और बहुमत की अनदेखी दोनों का देशी एकाधिकार और बहुराष्ट्रीय औद्योगिक निगमों से अंतर्बधन हुआ तथा स्थानीय शासक श्रेष्ठ वर्गों का अपने विदेशी प्रतिपक्षियों से अनैतिक अन्योन्यक्रिया ने आर्थिक शक्ति और राजनीतिक सत्ता के बीच नया सह-संबंध उत्पन्न किया, इसलिए, खासतौर पर, भारतीय समाजवाद के कार्यक्रमों की नीतियों, आदर्शों, क्रियाविधियों और संदेशों को याद करना आवश्यक है। कांग्रेस समाजवादी पार्टी के संस्थापक सदस्यों, स्वतंत्रता सेनानियों और समाजवादी सिद्धान्तवादियों और राजनीतिक सक्रियावादियों के रूप में डॉ. राम मनोहर लोहिया और जयप्रकाश नारायण ने भारत की समाजवादी विचारधारा और आर्थिक विकास में चिरस्मरणीय भूमिका निभाई।

15.7 अभ्यास प्रश्न

1) भारत में समाजवादी आन्दोलन का इतिहास स्पष्ट कीजिए।

2) कांग्रेस समाजवादी पार्टी के उद्‌भव और विकास क्रार्यक्रम और नीतियों की चर्चा कीजिए।

3) डॉ. राम मनोहर लोहिया के समाजवादी विचारों का विवेचन कीजिए।

4) जयप्रकाश नारायण के समाजवादी विचारधारा को स्पष्ट कीजिए।

5) समकालीन भारतीय समाज में समाजवादी विचारधारा की प्रासंगिकता का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।